



भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन और डॉ. रामविलास शर्मा का प्रगतिशील चिंतन

डॉ. सुलेखा कुमारी

सहायक प्राध्यापिका, हिंदी विभाग

विद्यासागर कॉलेज, कोलकाता.

सारांश :

हिन्दी में जितने भी संगठन रहें उसमें प्रलेस की भूमिका सर्वाधिक उल्लेखनीय रही है। इस कारण नहीं क्योंकि वह किसी राजनीतिक विचारधारा का पोषक था, क्योंकि उसके पास एक जीवन दृष्टि थी। वह प्रगति और स्वाधीनता के सिद्धांतों में विश्वास रखता है। डॉ० रामविलास शर्मा का यह मानना है कि प्रगतिशील साहित्य का अर्थ मार्क्सवादी विचारों को ढोने वाला साहित्य नहीं है। बल्कि हिन्दी की प्रगतिशील परंपरा को वह मानवतावादी परंपरा मानते हैं, स्वाधीनता तथा साम्राज्यवाद-विरोधी मानते हैं, क्योंकि मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का प्रश्न कभी भी राजनीतिक प्रश्न नहीं हो सकता यह समूची मानवता का प्रश्न है। उन्होंने प्रगतिशील आन्दोलन के राष्ट्रीय चरित्र पर जोर दिया है। यद्यपि इसे प्रेरणा मार्क्स के समाजवादी विचारधारा से मिलती है। किन्तु डॉ० शर्मा ने राष्ट्रीय चेतना को तत्कालीन स्थिति में अधिक महत्व दिया है। डॉ० शर्मा ने अपने साहित्यिक पढ़ावों और आलोचना के महत्वपूर्ण पक्षों द्वारा उसे साबित भी किया है।

बीज शब्द: प्रगतिशील, राष्ट्रीय, परम्परा, यथार्थ, स्वाधीनता

Copyright © 2024 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY-NC 4.0) which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium for non-commercial use provided the original author and source are credited.

आलेख:

20वीं सदी का पूर्वार्द्ध संघर्षों का काल रहा है। भारतीय मनीषा स्वाधीनता और राष्ट्रीयता जैसे नए शब्दों के विशिष्ट अर्थों को आत्मसात कर रही थी। ऐसे समय में राष्ट्रीय पटल पर होने वाली घटनाएँ स्वाधीनता के मार्ग में एक बड़ी हुई कोशिश थी। बुद्धिजीवियों की भूमिकाओं पर ध्यान दे तो हम देखेंगे की प्रथम महायुद्ध के बाद से ही विश्व के बुद्धिजीवियों में एक

सामान्य भावना का विकास हो रहा था जो ऐसे युद्धों के विरोध में और साम्राज्यवाद- फासीवाद की विरोधी थी। सन 1927 में गठित साम्राज्यविरोधी लीग की स्थापना ऐसा पहला सफल प्रयास था, जिसने बुद्धिजीवियों, कलाकारों, साहित्यकारों और जनचेतना से सरोकार रखने वालों को अपनी ओर आकर्षित किया। भारत में भी ऐसे ही किसी संगठन की आवश्यकता और राष्ट्रीय संदर्भों के साथ विश्व संदर्भों के जुड़ाव की जरूरत ने



प्रगतिशील लेखक संघ की नींव डाली। इससे पहले सोवियत संघ और पेरिस में लेखकों का संगठन बन चुका था। सज्जाद जहीर, मुल्कराज आनंद, ज्योति घोष, प्रमोद सेनगुप्ता, मुहम्मद दीन तासीर ऐसे संगठनों और विश्व पटल पर घट रहीं महत्वपूर्ण घटनाओं के प्रति सचेत थे। इन्होंने ही सन 1935 में लंदन में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की। प्रगतिशीलता को परिभाषित करते हुये इसके घोषणा पत्र में भारत के संघर्षों को विश्व के संघर्षों से जोड़ने की प्रेरणा अंतर्निहित थी। विश्व में फासीवाद और साम्राज्यवाद का विरोध और राष्ट्रीय स्तर पर ब्रिटिश शासन का विरोध एक ही सिक्के के दो पहलू थे।

डॉ. रामविलास शर्मा अग्रणी प्रगतिशील चिन्तक हैं। उनकी चिंतन दृष्टि का व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य परंपरा के मूल्यांकन और पुनर्मूल्यांकन में सामंतवाद और साम्राज्यवाद का विरोधी रहा है। प्रगतिशील आलोचना को डॉ० शर्मा ने एक स्पष्ट दृष्टि दी। इनकी आलोचना का प्रमुख तत्व है राष्ट्रीय सांस्कृतिक प्रगतिशील दृष्टि। राष्ट्रीयता का संदर्भ परंपरा के मूल्यांकन में जातीय परिकल्पना के स्वरूप में देख सकते हैं। 'परंपरा का मूल्यांकन' अपनी पुस्तक में डॉ० शर्मा शुरुआती पृष्ठों में ही अपनी चिंतन भूमि का परिचय देते हुये कहते हैं "महाभारत में पहली बार भारत राष्ट्र की कल्पना कविता में साकार हुई है।"¹ यह मात्र एक वक्तव्य नहीं है, डॉ० शर्मा अपने आलोचनात्मक सरोकारों में राष्ट्र और जाति को सर्वाधिक महत्व देते हैं। साहित्य और इतिहास, साहित्य और राष्ट्रीय अस्मिता, इतिहास और समाज, समाज और साहित्य, आलोचना और परंपरा का नवीन युग संदर्भ, डॉ० शर्मा के बौद्धिक आयामों में रचनात्मक और आलोचनात्मक संघर्ष राष्ट्रीय चिंतन के साथ

जुड़ा हुआ है। इसका सर्वाधिक विचारणीय पक्ष है- भक्तिकाल को लोकजागरण और आधुनिक काल को नवजागरण की संज्ञा देते हुए इनके वृहत ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को निरंतर आलोचना के केंद्र में रखना। डॉ० शर्मा ने साहित्य में राष्ट्रीय चेतना के साथ-साथ यथार्थवादी दृष्टि को विकसित होता माना है। उन्होंने सन 1936 के पहले अर्थात् प्रगतिशील लेखक संघ के निर्माण के पहले प्रेमचंद के साहित्य में विकसित होती यथार्थवादी चेतना को प्रगतिशील चिंतन से जोड़ा है। उन्होने भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग में रीतिवादी प्रवृत्तियों के अलगाव को भी यथार्थवाद की भूमि के विकास के रूप में देखा है।

रस- सिद्धांत के संदर्भ में उन्होंने परंपरा की रक्षा करते हुए उसमें राष्ट्रीय स्थिति की व्याख्या भी करते हैं। भारतीय साहित्य में तो ऐसे कई तत्व रक्षा करने योग्य; जन-साधारण के लिए सुलभ बनाने योग्य हैं। डॉ० शर्मा की रस- सिद्धांत के संबंध में सर्वाधिक मौलिक उद्भावना भावों की स्थिति को लेकर है। साहित्य स्वभावतः ही भावनामूलक होता है। रसवादी आचार्यों ने रस को नौ रसों, नौ स्थायी भावों में बाँधकर रस की स्थिति को सीमित कर दिया है- "भाववादी विचारक मनुष्य की कुछ भावनाओं को चिरंतन मानकर चलते हैं। साहित्य में रस की नौ श्रेणियाँ करने के पीछे भी यही दर्शन है। लेकिन मनुष्य का जीवन इस सीधे विभाजन से ज्यादा पेचीदा।"² इसका कारण यह कि "भावों का विकास हमारे सामाजिक विकास के साथ समृद्ध हुआ है। भाव आदिम समाज में भी थे, और पूंजीवादी समाज में भी; किंतु उनके स्वरूप में निरंतर परिवर्तन होता रहा। हमारा भावजगत परिवर्तनशील है। वह सामाजिक विकास के साथ निरंतर समृद्ध हुआ है। देशभक्ति



की भावना का विकास, हमारे नये सामाजिक विकास का ही परिणाम है।³ देशभक्ति से संबंधित भावनात्मक स्वरूप आधुनिक साहित्य में ही मिलता है; वह सामंती युग में नहीं था।

प्रगतिशील आंदोलन का चरित्र अखिल भारतीय था। न सिर्फ हिन्दी में बल्कि अन्य भाषाओं में प्रगतिशील आंदोलन की शुरुआत होती है। डॉ० शर्मा हिन्दी में प्रगतिशील आंदोलन के चरित्र को व्याख्यायित करते हुये लिखा है “बोलशेविक क्रांति के विरोध का मतलब है अत्याचार और शोषण का मुक़ाबला करनेवाली मजदूरों और किसानों की शक्ति को कमजोर करना। लेकिन भारत में अभी लड़ाई समाजवाद के लिए न हो रही थी, लड़ाई राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए हो रही थी। जमींदारों से किसानों का संघर्ष भी इसी लड़ाई के अंतर्गत है।”⁴ प्रेमचंद के संदर्भ में यह कहते हुये डॉ० शर्मा ने प्रगतिशील आन्दोलन के राष्ट्रीय चरित्र पर जोर दिया है। यद्यपि इसे प्रेरणा मार्क्स के समाजवादी विचारधारा से मिलती है। किन्तु डॉ० शर्मा ने राष्ट्रीय चेतना को तत्कालीन स्थिति में अधिक महत्व दिया है। साहित्य में यथार्थवादी प्रवृत्ति का गहरा संबंध राष्ट्रीयता से था। स्वयं डॉ० शर्मा के चिंतन के अनुसंगों पर राष्ट्रीयता का गहरा प्रभाव रहा है। यह विचारणीय है कि इस युग की प्रगतिशील चेतना का विकास बहुमुखी दिशाओं में हुआ। जिसको रेखांकित करते हुये रेखा अवस्थी लिखती हैं “मार्क्सवादी और गैर-मार्क्सवादी लेखकों की जनवादी एकता का आधार वह समाजवादी चेतना थी जो कुछ लेखकों को राष्ट्रीय जनसंघर्षों के संपर्क से प्रकट हुई थी, कुछ लेखकों को स्वतः स्फूर्त ढंग से उभर रहे यथार्थवादी रुझानों के विकास के क्रम में मिली थी और कुछ लेखकों को कम्युनिस्ट पार्टी तथा मार्क्सवादी

साहित्य की प्रेरणा से सचेत रूप में अनिवार्यतः मिली थी। इस तरह समाजोन्मुख लेखक एक दूसरे के करीब आए थे।⁵ इसका सबसे बड़ा कारण था साहित्य में नयी यथार्थवादी दृष्टिकोण का प्रभाव जिसका

गहरा संबंध प्रगतिशील मूल्यों से था।

डॉ० शर्मा ने मध्यकाल का सामंत-विरोधी दृष्टिकोण से मूल्यांकन किया है वहीं आधुनिक काल में उनकी दृष्टि साहित्य मूल्यांकन के संदर्भ में साम्राज्यविरोधी चेतना को सर्वाधिक महत्व देते हैं। आधुनिक काल में उन्होंने भारतेन्दु युग से लेकर नयी कविता तक भारतेन्दु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, निराला, प्रेमचंद, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन तक प्रगतिशील जीवनदृष्टि का विकास दिखलाते हुये उसे यथार्थवाद के विकास के रूप में देखा है। डॉ० शर्मा सन 1857 से शुरू होने नवजागरण के केंद्र में साम्राज्यविरोधी चेतना का प्रसार 1947 तक दिखलाते हैं, साथ ही आधुनिक युग की पृष्ठभूमि में नवीन जातीय उन्मेष को भी बराबर दिखलाते चलते हैं। राष्ट्रीय और देश भक्ति के स्वर में उन्होने जिस जातीय अस्मिता को देखा उसकी एक लंबी परंपरा प्रस्तुत करते हुये डॉ० शर्मा कहते हैं “भारतेन्दु हरिश्चंद्र के समय में हिन्दी भाषियों के एक विशिष्ट इकाई होने की चेतना साहित्य में झलकने लगी थी। और महावीर प्रसाद द्विवेदी के समय में विशाल हिन्दी जाति अपनी निगूढ़ आवश्यक शक्ति पहचान रही थी। यही नहीं की हम क्या थे और क्या हो गए हैं; वरन् यह भी की हम क्या हो सकते हैं; जातीय उन्मेष की यह प्रबल भावना महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके सहयोगियों को निरंतर प्रेरित करती है।”⁶ निराला को उन्होंने एक तरफ इस पृष्ठभूमि से जोड़ते हुये उन्हें सांस्कृतिक नवजागरण का अग्रदूत



माना है, साथ ही एक ओर उनका संबंध तुलसीदास से जोड़ते हैं। निराला के 'बिल्लेसुर बकरिहा' में यथार्थवादी दृष्टि को डॉ० शर्मा ने विशेष रूप से बार-बार उल्लेखित किया है। निराला का परिचय देते हुये वे लिखते हैं कि 'ऐसा लगता है जैसे 1857 का कोई सिपाही सीधे गदर के मैदान से आ गया हो; डॉ० शर्मा जब यह कहते हैं तो इसमें उनके अपने जनपद की संस्कृति का स्पर्श है जिसे उनके साम्राज्यवाद विरोध का आरंभिक चरण भी मान सकते हैं।

सन 1936 से 1947 तक राष्ट्रीय धारा का विकास गांधी के नेतृत्व में हुआ। गांधी में साम्राज्यवाद का विरोध है, किन्तु गांधी किसान और मजदूर का एका मजबूत कर जमींदारों और पूंजीपतियों से मोर्चा लेने तक नहीं पहुँचते हैं। डॉ० शर्मा लिखते हैं "गांधी जी एक ओर जहाँ नवजागरण के अग्रदूत थे वह दूसरी ओर वे स्वधीनता आंदोलन को किसान क्रांति का व्यापक रूप लेने से रोकने वाली शक्ति भी थे।"⁷ यह नहीं कि डॉ० शर्मा गांधी की भूमिका को राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य पर नहीं समझ पाते, वह लिखते हैं "गांधी जी की विचारधारा का मूल्य पहचानने के लिए यह याद रखना चाहिए कि भारतीय समाज का मुख्य अंतर्विरोध श्रमिक वर्ग और पूंजीपतियों का नहीं था, साम्राज्यवाद और समस्त भारतीय जनता का था। इस समस्त भारतीय जनता में पूंजीपति भी शामिल थे।"⁸ यह समझ पूरे प्रगतिशील लेखक संघ के अंदर नहीं थी। डॉ० शर्मा गांधीवाद के महत्व के साथ उसकी कमियों को भी उजागर करते रहे हैं। डॉ० शर्मा प्रगतिशील लेखकों से यह उम्मीद रखते थे कि वे भारतीय परिदृश्य पर हो रहे परिवर्तन के साक्षी बने और अपने साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना के विकल्प को भी प्रस्तुत करें। सन 1947 में देश के बंटवारे को डॉ० शर्मा प्रगतिशील

साहित्यांदोलन की सबसे बड़ी चूक और कमी मानते हैं। उन्होंने सज्जाद ज़हीर और मुल्कराज आनंद की भूमिका पर सवाल उठाए क्योंकि उन्हें प्रगतिशील लेखक संघ से यह उम्मीद थी कि स्वाधीनता के अधूरे कार्य को प्रगतिशील साहित्यांदोलन पूरा कर सकता था मगर एक ओर प्रगतिशील लेखकों के नेतृत्व की बेरुखी ने संगठन के उद्देश्य को असफल किया। स्वाधीनता और राष्ट्रीय चेतना का उभार जिस तरह संगठन की बुनियादी ईंट होनी चाहिए थी वह कोशिश नहीं दिखती। जिसका उल्लेख करते हुये डॉ० शर्मा लिखते हैं "1935 में मुल्कराज आनंद और सज्जाद जहीर ने लंदन में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की। इन्होंने जो घोषणा पत्र तैयार किया उसमें ब्रिटिश साम्राज्यवाद या भारतीय स्वाधीनता का जिक्र नहीं है। सन 1936 में थोड़े हेर-फेर के साथ यह घोषणा पत्र फिर जारी किया। स्वाधीनता का लक्ष्य पहले की तरह गायब था।"⁹

डॉ० शर्मा की नजर बराबर राष्ट्रीय जन चेतना पर थी। इस उद्देश्य के साथ उन्होने प्रगतिशील साहित्यांदोलन को लगा हुआ मानकर ही उसकी जनवादी भूमिका पर बार-बार ज़ोर दिया। प्रेमचंद को वह प्रगतिशील लेखकों का अगुआ इसलिए नहीं मानते कि उन्होंने प्रगतिशील लेखक संघ का अध्यक्ष बनाया गया बल्कि उनका साहित्य जिस स्वाधीनता का पैरोकार रहा है वह स्वाधीनता जॉन की जगह गोविंद को बैठा देने वाली स्वधीनता नहीं थी। प्रेमचंद के बाद प्रगतिशील साहित्यांदोलन से डॉ० शर्मा को यह उम्मीद थी कि यह उनके कार्य को आगे की दिशा देगा "मैं यह बता दूँ कि प्रगतिशील लेखक संघ और कम्युनिस्ट पार्टी में आने के पहले मैं प्रेमचंद पर एक किताब लिख चुका था। उसमें मेरी जो मान्यता है वह



अब भी नहीं बदली और उसकी भूमिका में मैंने लिखा था कि प्रगतिशील लेखकों को यह मालूम हो जाए की उनको कहाँ से शुरुआत करनी चाहिए। प्रेमचंद यहाँ तक पहुँच गए हैं और उसके आगे अब आप लिखेंगे तब आप प्रगतिशील कहलायेंगे।”¹⁰ डॉ० शर्मा ने स्वधीनता आंदोलन की आड़ में तेज हो रही सांप्रदायिक ताकतों को पहचान रहे थे इसलिए वह प्रगतिशील लेखक संघ के मंच से जहाँ एक ओर हिन्दी और उर्दू की एकता पर जोर दे रहे थे वहीं भाषा के प्रश्न पर लगातार लिख भी रहे थे। भाषागत बंटवारे ने धार्मिक बंटवारे को हवा दी। प्रलेस की भूमिका इस समय में अग्रणीय होनी चाहिए थी जिस ओर डॉ० शर्मा बार-बार प्रश्न कर रहे थे। उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन के लक्ष्य को प्रलेस से जोड़कर हमेशा देखा। इस कारण स्वाधीनता के प्रश्न को महासचिव के पद पर रहते हुये बराबर उठाते रहे हैं “सवाल यह है कि जिस समय हिंदुस्तान का विभाजन हुआ उस समय प्रगतिशील लेखक संघ की नीति क्या थी? उस समय उसके महामंत्री हिंदुस्तान चले गए और हिंदुस्तान में विभाजन के विरुद्ध में प्रगतिशील लेखक संघ ने कुछ नहीं किया। उसके भीतर हिन्दी और उर्दू के लेखकों में विभाजन था। काँग्रेस और लीग को मिलाने पर जिस तरह सांप्रदायवाद का समर्थन किया गया, वह सांप्रदायिक विभाजन प्रगतिशील लेखक संघ के भीतर भी मौजूद था।”¹¹

निष्कर्ष:

प्रगतिशील साहित्य परंपरा और डॉ० रामविलास शर्मा के कार्यों को देखते हुये यह कहा जा सकता है कि डॉ० शर्मा ने प्रगतिशील साहित्य और राष्ट्रीय आन्दोलन की भूमिका के सबसे बड़े गवाह रहें हैं। वह साहित्य और संगठन दोनों की

ओर एक ही उद्देश्य से मुड़े थे वह था हिन्दी जनता के ज्यादा से ज्यादा भाग को उसके असल यथार्थ से वाकिफ कराना और उसमें वर्तमान की समझ पर भविष्य की ओर आगे बढ़ने की समझ तैयार करना। उन्होंने प्रलेस के राष्ट्रीय स्वरूप को, उसके अखिल भारतीय स्वरूप को उसकी सबसे बड़ी विशेषता माना। जिस प्रकार जातीय प्रारूप पर डॉ० शर्मा ने भक्तिकाल और आधुनिक काल को खड़ा किया वह प्रगतिशील साहित्य आंदोलन के राष्ट्रीय और जातीय चरित्र को एक दिशा देता है। उन्होंने बहुत दूर तक प्रलेस के कार्यों और उसके राष्ट्रीय स्तर के हस्तक्षेपों पर चिंतन मनन किया है।

संदर्भ – सूची:

1. शर्मा रामविलास, ‘परंपरा का मूल्यांकन’, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण -2011, पृष्ठ-19
2. शर्मा रामविलास, ‘मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य’, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-1984, पृष्ठ-269
3. शर्मा रामविलास, ‘मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य’, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-1984, पृष्ठ-235
4. शर्मा रामविलास, ‘प्रेमचंद और उनका युग’, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सातवीं आवृत्ति -2014, पृष्ठ-195
5. अवस्थी रेखा, ‘प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य’, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012, पृष्ठ-299
6. शर्मा रामविलास(सं), ‘लोकजागरण और हिन्दी साहित्य’, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, आवृत्ति 2013, पृष्ठ-277



7. शर्मा रामविलास, 'प्रेमचंद और उनका युग', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सातवीं आवृत्ति -2014, पृष्ठ-157
8. शर्मा रामविलास, 'प्रेमचंद और उनका युग', राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, सातवीं आवृत्ति -2014, पृष्ठ-156
9. शर्मा रामविलास, 'प्रगतिशील काव्यधारा और केदारनाथ अग्रवाल', साहित्य भंडार, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-2011, पृष्ठ-23
10. शर्मा रामविलास, 'मेरे साक्षात्कार', किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, चतुर्थ संस्करण-2011, पृष्ठ-99
11. शर्मा रामविलास, 'मेरे साक्षात्कार', किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, चतुर्थ संस्करण-2011, पृष्ठ-102

Cite This Article:

डॉ. कुमारी स. (2024). भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन और डॉ. रामविलास शर्मा का प्रगतिशील चिंतन, In Electronic International Interdisciplinary Research Journal: Vol. XIII (Number I, pp. 6–11)
EIJR. <https://doi.org/10.5281/zenodo.10646446>